Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 4 | ISSN : 2581- 6306

भक्ति रस की अवधारणा (श्रीरूपगोस्वामी के अनुसार)

स्वाती द्विवेदी
वरिष्ठ शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,
नेहरू ग्राम भारती मानित विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

डॉ0 देव नारायण पाठक
संस्कृत विभागाध्यक्ष,
नेहरू ग्रामभारती मानित विश्वविद्यालय,
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

Article Info
Volume 4, Issue 4
Page Number : 74-78
Publication Issue :
July-August-2021
Article History
Accepted : 03 July 2021
Published : 10 July 2021

सारांश– आचार्य रूपगोस्वामी ने भरतमुनि के रससूत्र के आलोक में भक्तिरस को प्रतिष्ठापित किया। अपने ग्रन्थ 'भक्तिरसामृतसिन्धु' में भक्तिरस को निरूपित करते हुए 'सामग्री परिपोषेण रसरूपता' अर्थात् विभावादि सामग्री के द्वारा परिपुष्ट कृष्ण विषयक रति (भगवद् भक्ति) को ही भक्तिरस माना है। यद्यपि भक्ति अथवा प्रीतिविषयक रति की अवधारणा प्राचीन काव्यशास्त्रियों के काव्यों में विद्यमान है तथापि भक्ति रस को काव्यगत रूप प्रदान कर उसे प्रतिष्ठित करने का श्रेय श्रीरूपगोस्वामी को ही है।

मुख्य शब्द– रस, भक्तिरस, काव्यशास्त्र, मधुर रस, चित्त, सिद्धान्त, श्रीरूपगोस्वामी।

मानव संस्कृति के विकास क्रम के साथ ही काव्यात्म अनुभूति की परम्परा का भी विकास हुआ। काव्यात्म अनुभूति की परम्परा के इस विकास क्रम में **'रस सिद्धान्त'** की विवेचना नाट्यशास्त्र का एक अनिवार्य और अभिन्न अंग माना जाता है। रस सिद्धान्त को शास्त्रीय स्वरूप सर्वप्रथम आचार्य भरतमुनि ने प्रदान किया। दशरूपककार आचार्य धनंजय ने रस को रूपक का तृतीय भेदक तत्त्व बताया है।[1] उनकी दृष्टि में रस का महत्त्व इतना अधिक है कि रसाभाव में किसी अन्य नाट्यार्थ का प्रवृत्त होना सम्भव ही नहीं। [2] रसों तथा भावों को व्यवस्थित कर सकने वाला व्यक्ति ही नाट्य रचना ने सफलता प्राप्त कर सकता है तथा उत्तम सिद्धि का अधिकारी है।

वैदिक काल से ही रस का प्रादुर्भाव माना जाता है। आचार्य भरतमुनि ने नाट्य को पंचम वेद माना हैं[3] एवं अथर्ववेद से रसतत्त्व की उत्पत्ति को बताया है।''[4]

'रसानथर्वणादपि'

रस का प्रयोग विविध अर्थों में किया जाता है। वाणी की मधुरता के संदर्भ में अतिशय सौन्दर्य में अथवा विशुद्ध प्रेम की पराकाष्ठा में भी रस का स्वरूप प्राप्त होता है। ऋग्वेद में रस कभी गौ–क्षीर के लिए कभी सोमरस हेतु अथवा कभी वाणी की मधुरता को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त हुआ है।[5] 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में रस को सारभूत तत्त्व कहा गया है।[6] रसचर्वणा की पराकाष्ठा परमानन्द की अनुभूति को ही माना गया है। 'तैत्तिरीयोपनिषद्' में **'रसो वै सः, रसं ह्येवायं लब्ध्वा नन्दी भवति'** [7] कहकर ब्रह्म को ही रसरूप में स्वीकार किया गया है। अनादि काल से जन्म–मरण के बन्धन में बँधा जीवात्मा रसमय परब्रह्म को प्राप्त कर आनन्द के सागर में गोते लगाने लगता है। यही परमानन्द है।

आचार्य भरतमुनि के मतानुसार मानसिक व्यापार के द्वारा ही नाट्यरस का आस्वादन किया जा सकता है और वह अलौकिक रसास्वादन होता है। रस सहृदय के हृदयस्थित वासना की आनन्दमय

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

परिणति है। रसों की संख्या के सम्बन्ध में काव्यशास्त्रियों के अनेक मत रहे हैं। किसी ने रसों की संख्या आठ मानी तो किसी ने अधिक। आचार्य भरतमुनि ने नाट्य में आठ रसों को स्वीकार किया है।

श्रृंगारहास्यकरूणरौद्रवीरभयानकाः
वीभत्साददभुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः ।।[8]

आगे चलकर काव्यप्रकाशकार आचार्य सम्मट ने **''निर्वेद स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः''[9]** लिखकर शान्त को नवम रस के रूप में प्रतिष्ठापित किया • रसाचार्यों की परम्परा में गौणीय वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य श्रीरूपगोस्वामी का नाम अत्यन्त श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इन्होंने साहित्य–शास्त्र में काव्यात्म के रूप में प्रतिष्ठापित रससिद्धान्त को उपजीव्य बनाकर भक्तिरस के सन्दर्भ में एक अत्यन नवीन एवं अभूतपूर्व रस–सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। श्रीरूपगोस्वामी के पूर्व के रसाचार्यों ने भक्ति को अलग रस के रूप में प्रतिपादित करने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने भक्ति को केवल भगवद्–विषयक एक सहज वृत्ति माना। भक्ति को भाव का समानार्थक माना तथा उसे भावरूपेण ही सिद्ध करने का प्रयास किया।

साहित्यशास्त्र के आचार्य भामह, आचार्य दण्डी, आचार्य उद्भट, आचार्य आनन्दवर्धन आदि ने किसी न किसी रूप में भक्ति का ग्रहण तो किया परन्तु एक पृथक् रस के रूप में स्वीकार नहीं किया। आचार्य मम्मट ने भक्ति को अध्यात्म रस के रूप में न स्वीकार करके काव्यरस के रुप में स्वीकार किया है। आचार्य हेमचन्द्र आचार्य धनंजय, पं० राजजगन्नाथ आदि प्रमुख आचार्यों ने भाव के रूप में ही भक्ति को मान्यता दी है, पृथक् रसरूप में नहीं।

आचार्य भरतमुनि द्वारा प्रतिपादित रससूत्र **विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः[10]** को आधार बनाकर आचार्य श्रीरूपगोस्वामी ने भक्ति को एक नवीन एवं स्वतन्त्र रस के रूप में प्रतिष्ठापित किया तथा अपने इस प्रयास में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

श्रीरूपगोस्वामी ने भक्तिरस का निरूपण करते हुए कहा है– **'सामग्री परिपोषेण रसरूपता'** अर्थात् सामग्री विभाव, अनुभाव आदि रूप के द्वारा पुष्ट होने से भगवद्भक्ति की परमरसरूपता का उपपादन किया जा सकता है। श्रीरूप भक्तिरस का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि–''विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव तथा व्यभिचारियों के द्वारा श्रवण आदि की सहायता से भक्तों के हृदय आस्वाद्यता को प्राप्त हुआ यह कृष्ण रतिरूप स्थायिभाव भक्तिरस कहलाता है।''[11] भक्तिरस सिद्धान्त के अनुसार जिस भक्त का हृदय या अन्तःकरण भक्तिभावना से सुवासित है वही भक्तिरस का आस्वादन करने योग्य माना जा सकता है।

भक्तिरस के आचार्यों ने रसास्वादन की नवीन प्रक्रिया का प्रारम्भ किया। श्रीरूपगोस्वामी के अनुसार प्रत्यक्ष आनन्दरूप श्रीकृष्ण की रति विभावादि का सानिध्य प्राप्त कर आस्वाद्य हो जाती है तथा चमत्कारिता को प्राप्त होकर परमानन्द श्रीरूपगोस्वामी रूप में परिणत हो जाती है। तात्पर्य है कि भक्ति अथवा कृष्णरति परमानन्दरूपा है, क्योंकि यह श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति राधा की स्वतः वृत्तिरूप है। भक्तिरसामृतसिन्धु में कहा है कि भावना द्वारा ही भक्तिरस का अनुभव नहीं किया जा सकता। भावना के पथ का अतिक्रमण करके एवं अतिशय चमत्कारिता का आधार स्वरूप होकर जो सत्त्वोज्ज्वल चित्त में आस्वादित होता है, उसे भक्तिरस कहते हैं।[12]

इस प्रकार भक्तिरस का आस्वादन केवल उन्हें ही प्राप्त होता है, जो श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त या उपासक होते हैं। अभक्त इस रसास्वादन से विरहित ही होते हैं। श्रीरूपगोस्वामी भक्त का लक्षण स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि– जिसका अन्तःकरण श्रीकृष्ण के भाव से भावित है, उन्हें भक्त कहते हैं।''[13]

श्रीरूप ने भक्तों की भी दो श्रेणी स्वीकार की है–(1) साधक (2) सिद्ध।

इनमें से कृष्णभक्तिरसास्वादन केवल सिद्ध भक्तों को ही प्राप्त होता है। यही भक्तिरस सम्प्रदाय में रसास्वादन अथवा चर्वणा की प्रक्रिया स्वीकार की गयी है।

श्रीरूपगोस्वामी ने साहित्यशास्त्रियों द्वारा प्रतिपादित रसों की गौण रूप में गणना की तथा भक्तिरस को मुख्य या प्रधान रस के रूप में प्रतिष्ठापित किया। उन्होंने भक्तिरस को भी मुख्य एवं गौण दो विभागों में विभक्त किया, जो इस प्रकार है–

मुख्य भक्ति रस	**स्थायीभाव**
1. शान्त भक्ति रस	शान्ति रति स्थायी
2. प्रीति भक्ति रस	प्रीतिरति स्थायी
3. प्रेयान्भक्ति रस	संख्य रति स्थायी
4. वत्सल भक्ति रस	वात्सल्य रति स्थायी
5. मधुर भक्ति रस	मधुरारति स्थायी

हास्य, अदभुत, वीर, करूण, रौद्र, भयानक, वीभत्स आदि रसों को श्रीरूप ने गौण भक्तिरस के रूप में स्वीकार किया है। उनकी यह मुख्य एवं गौण रस की कल्पना भक्ति रस को मुख्य रस के रूप में प्रतिष्ठापित करने हेतु ही हुई है।

जिस प्रकार श्रृंगार रस को साहित्यशास्त्र में 'रसराज की उपाधि प्राप्त है, उसी प्रकार श्रीरूपगोस्वामी ने भक्तिरस के एक भेद 'मधुरभक्ति रस को रसराज के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। इस मधुर रस को ही अलौकिक श्रृंगार, उज्ज्वल रस, भक्तिरस आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया गया।

भक्तिशास्त्र में देवविषयक रति–प्रधान शास्त्र को अलौकिक श्रृंगार की श्रेणी में रखा गया है। श्रृंगारपरक मधुराभक्ति को उज्जवल रस या मधुर रस स्वीकार कर उसे 'रसराज' के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। श्रीरूपगोस्वामी ने नव रसों का अन्तर्भाव भक्तिरस में मानकर भक्तिरस को प्रधान रस के रूप में प्रकट किया है। इस प्रकार उज्जवल, मधुर तथा भक्तिरस एक–दूसरे के पर्याय के रूप में ही स्वीकार किये गये हैं। श्रीरूप ने भक्ति के समक्ष ज्ञान, कर्म, योग को सर्वथा नगण्य मानते हुए मोक्ष को भी तुच्छ माना है।''[14]

लीलाधारी कृष्ण एवं गोपिकाओं की नित्य रासलीला को श्रीरूपगोस्वामी ने मधुररस की आत्मा का स्थान दिया है। मधुररस का स्वरूप वर्णन करते हुए 'भक्तिरसामृतसिन्धु में कहा गया है कि 'आत्मोचित विभावादि द्वारा मधुरारति जब सदाशय व्यक्तियों के हृदय में परिपुष्ट होती है तब उसे मधुर नामक भक्तिरस की संज्ञा दी जाती है। यह मधुर रस निवृत्त जनों के लिए अनुपयोगी दुरूह तथा रहस्यपूर्ण है, यद्यपि यह मधुर रस बहुत ही विशाल एवं विततांग है।[15]

भगवान् श्रीकृष्ण एवं शक्तिस्वरूपा राधिका मधुर रस के आलम्बन हैं उन दोनों की मधुरा रति ही उस दिव्य मधुरभक्तिरस का स्थायी भाव है। मधुरा रति को भगवद्विषयक रति भी कहा जाता है। यह भगवद् रति भक्त की प्रवृत्ति के अनुसार पाँच प्रकार की मानी गयी है– (1) शान्ता (2) प्रीता (3) प्रेयसी (4) अनुकम्पा और (5) कान्ता। मधुरा रति मधुर रस का स्थायीभाव है जो विषय, सम्बन्ध, उपमा तथा स्वभाव आदि के द्वारा प्रकट होती है।

रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण एवं उनकी नित्य कान्ता श्री राधिका को मधुर रस में नायक एवं नायिका के रूप में स्थापित किया गया है। श्रीकृष्ण एवं गोपिकाएँ ही मधुर रस के आलम्बन रूप हैं।

भक्तिरस के संदर्भ में जो भगवद् भक्ति अथवा भगवद प्रेम को उद्दीप्त करे वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं। ये विभाव आलम्बन एवं उद्दीपन के भेद से दो प्रकार के कहे गये हैं। नायक–नायिका का नाम श्रवण, गुण, चरित्र, मुरली माधुरी आदि को उद्दीपन विभाव माना गया है।

अनुभाव की व्युत्पत्ति बताते हुए आचार्य भरत कहते हैं– **'अनुपश्चात् भवन्तीति अनुभावाः' अथवा 'अनुभावयन्ति ज्ञापयन्ति भावात् इति अनुभावाः**।[16] वे बाह्य लक्षण जो रसोत्पत्ति के सूचक हैं, वे अनुभाव कहलाते हैं। भक्तिशास्त्र में इसे 'उद्भासुर' के नाम से अभिहित किया गया है। श्रीरूप के अनुसार–

अनुभाव तो चित्त में स्थित मुख्य भावों के बोधक होते हैं। वे प्रायः बाह्य विक्रिया के रूप होते हैं और 'उद्भासुर की संज्ञा से व्यक्त किये गये हैं।''[17]

काव्यशास्त्र में वर्णित परम्परागत सात्त्विक भावों को श्रीरूप ने अपने मधुर रस के सिद्धान्त में स्वीकार किया है। भावों से आक्रान्त चित्त सत्त्व कहलाता है और सत्त्व से उत्पन्न भाव सात्त्विक भाव।

संचारी एवं व्यभिचारी भाव साहित्यशास्त्र में मूलतः पर्याय के रूप में प्रयुक्त होते हैं किन्तु श्रीरूपगोस्वामी ने इन्हें पृथक–पृथक रूप में वर्णित किया है। व्यभिचारीभाव स्थायी भाव के पोषक होते हैं किन्तु संचारीभाव, भाव की गति के संचालक। ये संचारीभाव स्थायीभाव के पोषक भी होते हैं तथा भावरूप भी होते हैं। श्रीरूपगोस्वामी ने श्रृगार मधुर रस के (1) विप्रलम्भ और (2) सम्भोग ये दो भेद माने हैं। मधुर रस के परिप्रेक्ष्य में श्रीरूप ने विप्रलम्भ को ही प्रमुख माना है तथा उसी में राग का चरमोत्कर्ष माना है। जैसे कषैले वस्त्रादि में निरन्तर उसके रंग में गाढ़ापन वृद्धि को प्राप्त करता है उसी प्रकार विप्रलम्भ के कारण मुधर रस अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त करता है।[18]

श्रीरूपगोस्वामी ने संभोग को बताते हुए कहा है कि अनुकूल स्थिति को प्राप्त होने पर नायक–नायिका के उल्लासयुक्त भाव को सम्भोग कहा जाता है। श्रीरूप के मतानुसार अलौकिक नायक–नायिका के सम्भोग श्रृंगार में वासनात्मकता का सम्पूर्ण अभाव पाया जाता है। उनका संगम आत्मसुखरूप नहीं होता अपितु सर्वसुखरूप होता है। उनके सम्भोग श्रृंगार में वासना का स्पर्श दूर–दूर तक नहीं प्राप्त होता है।

श्रीरूपगोस्वामी का सम्भोग श्रृंगार सम्बन्धी मत पूर्ववर्ती आचार्यों से पृथक् है जो कि श्रीरूप की अपनी विशिष्टता है। इसे उनके स्वयं की मौलिकता मानी जा सकती है।

इस प्रकार मधुर रस के परिप्रेक्ष्य में उपलब्ध सिद्धान्तों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि मधुर रस का चरमोत्कर्ष श्रीरूप को अभीष्ट है। शास्त्रीय रूप से 'भक्तिरस' की स्थापना करके श्रीरूप ने मधुर रस को रसराज' के रूप में प्रतिष्ठापित किया। इसी मधुर रस को उन्होंने उज्ज्वल रस भी माना है। श्रीरूपगोस्वामी श्रृंगार से मुधर रस की श्रेष्ठता बताते हुए कहते हैं कि मधुर रस अलौकिक रसास्वादन करवाता है जबकि श्रृंगार केवल लौकिक जब श्रृंगार रस में रजोगुण एवं तमोगुण का अवशेष समाप्त हो जाता है एवं केवल सत्त्व गुण की ही सत्ता अवशिष्ट रह जाती है तो वही दिव्य रस, मधुर रस या उज्जवल रस के रूप में परिणत होता है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पूर्ववर्ती साहित्यशास्त्र की परम्परा का अनुकरण करते हुए आचार्य श्रीरूपगोस्वामी ने भक्तिरस के परिप्रेक्ष्य में अपने **विशिष्ट भक्तिरस सिद्धान्त** का प्रतिपादन किया। उनका सिद्धान्त पूर्वपरम्परा पर आधृत तो है किन्तु विभाव, अनुभाव, सात्त्विक भाव, संचारी भाव, स्थायी आदि भावों से सम्बन्धित नवीनता भी है।

श्रीरूपगोस्वामी का सिद्धान्त पूर्णरूपेण भक्ति की भावना से ओत–प्रोत होने के कारण लीलाधारी कृष्ण एवं हृदयाहलादिनी राधा के रसमय स्वरूप का दिग्दर्शन माना जा सकता है। श्रीरूप का भक्तिरस सिद्धान्त साहित्यशास्त्र का एक नवीन पथ है। भक्ति ही उज्जवल है, भक्ति ही मधुर है, भक्ति ही श्रृंगार है। श्रीरूप का भक्ति सिद्धान्त मात्र सिद्धान्त तक ही सीमित नहीं है अपितु यथार्थ और तर्कसंगत होते हुए साहित्य संसार में एक नूतन रसधारा को प्रवाहित कर रहा है।

सन्दर्भः

1. दशरूपक आचार्य धनंजय, प्रथम प्रकाश, पृ०सं० 18
2. न हि रसादृते कश्चिदर्थ प्रवर्तते–नाट्यशास्त्र, आचार्य भरत, चौ०, पृ०सं० 10/71
3. ''नाट्याख्यं पंचम वेदं'' नाट्यशास्त्र आचार्य भरत, चौ०, पृ०सं० 1/15
4. नाट्यशास्त्र – आचार्य भरत, चौ०, पृ०सं० 1/17
5. वाचा वदामि मधुमद् भूयास मधुसन्दृशः 10/24/6, 5/73/8, 12/1/16
6. प्राणे वा अंगानां रसः–बृहदारण्यकोपनिषद्
7. तैत्तिरीयोपनिषद् 2/7/1

8. नाट्यशास्त्र आचार्य भरतमुनि– 6–16
9. काव्यप्रकाश आचार्य मम्मट–चतुर्थ उल्लास– पृ०सं० 138 सूत्र 47
10. नाट्यशास्त्र – आचार्य भरत मुनि
11. विभावैरनुभावैश्च.....भक्तिरसोभवेत्। भ०र०सि० रूपगोस्वामी दक्षिण विभाग, लहरी प्रथम, श्लोक 5,6
12. भक्तिरसामृतसिन्धु–रूपगोस्वामी
13. तनवभावित स्वान्तः कृष्णभक्ता इतीरिता।
14. भक्तिरसामृतसिन्धु– रूपगोस्वामी– पू०वि०, लहरी–11–13
15. आत्मोचितैर्विभावाद्यैः पुष्टि नीता सतां हृदि..... । ह०भ०र०सि० प०वि०लव 5
16. नाट्यशास्त्र – आचार्य भरत 6/31
17. अनुभावस्तु चित्तस्थभावनामबोधकः । ते बहिर्विक्रियाप्रायाः प्रोक्ता उनसुराख्यया
भ०र०सि०–रूपगोस्वामी दक्षिण विभाग अनुभावलहरी का० प्रथम
18. भक्तिरसामृतसिन्धु–रूपगोस्वामी